International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 8, Issue 03, March 2021
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

राजस्थान की मध्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. निशी सिन्हा
सहायक आचार्य (इतिहास विभाग)
संत जयाचार्य महिला महाविद्यालय, शास्त्री नगर, जयपुर (राजस्थान)
(राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान)

लेख सार :

एक व्यवस्थित राज्य के लिये प्रशासनिक व्यवस्था अनिवार्य तत्त्व है। मध्यकाल में राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था से तात्पर्य मुगलों से सम्पर्क के बाद से लेकर 1818 ई. में अंग्रेजों के साथ हुई सन्धियों की काल अवधि के अध्ययन से है। इस काल अवधि में राजस्थान 22 छोटी–बड़ी रियासतें थी, और अजमेर मुगल सूबा था, इन सभी रियासतों का अपना प्रशासनिक तन्त्र था, लेकिन कुछ मौलिक विशेषताये एकरूपता लिये हुए भी थी। रियासते मुगल सबू के अन्तर्गत होने के कारण मगुल प्रभाव भी था।

लेख शब्द : प्रशासन, सामन्त, फ्यूडल, जागीर, पदसोपान, विशेषाधिकार, उत्तरदायित्व, सहयोगी, परिवर्तन, कर, उत्तराधिकारी, शुल्क, मनसबदारी, प्रधान, न्याय, भू–स्वामित्व, लगान, वसूली।

लेख भूमिका :

राजस्थान की मध्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था के मूलतः तीन आधार थे – प्रथम : सामान्य एवं सैनिक प्रशासन। दूसरा : न्याय प्रशासन। तीसरा : भू–राजस्व प्रशासन।

सम्पूर्ण शासन तंत्र राजा और सामन्त व्यवस्था पर आधारित था। राजस्थान की सामन्त व्यवस्था रक्त सम्बन्ध और कुलीय भावना पर आधारित थी। सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टॉड ने यहाँ की सामन्त व्यवस्था के लिये इंग्लैण्ड की फ्यूडल व्यवस्था के समान मानते हुए उल्लेख किया है। इसे विद्वानों ने केवल राजनीतिक शब्दावली के रूप में नहीं लिया वरन् सम्पूर्ण अर्थ में सामन्त व्यवस्था को समझना आवश्यक समझा, इस दृष्टि से अब राजस्थान ही नहीं वरन् भारत के संस्थागत इतिहास के अध्ययन का नया क्षेत्र खुल गया। राजस्थान की सामन्त व्यवस्था पर व्यापक शोध कार्य के बाद यह स्पष्ट हो गया कि यहाँ की सामन्त व्यवस्था कर्नल टॉड़ द्वारा उल्लेखित पश्चिम के फयूडल व्यवस्था के समान स्वामी (राजा) और सेवक (सामन्त) पर आधारित नहीं थी राजस्थान की सामन्त व्यवस्था रक्त सम्बन्ध एवं कुलीय भावना पर आधारित प्रशासनिक और सैनिक व्यवस्था थी।

राजस्थान में सामन्त व्यवस्था का मूल तत्व था शासक पिता की मृत्यु के बाद बड़ा पुत्र राजा बनता, राजा अपने छाटे भाइयों को जीवनयापन के लिये भूमि आवंटित करता, भाई–बन्धु को प्रदत्त उक्त भूमि का स्वामी 'सामन्त' कहलाता था। मध्यकाल में भू–स्वामी सामन्त को 'सामन्त जागीरदार' कहा जाने लगा, सामन्त जागीर पर सामन्त का जन्मजात अधिकार माना जाता था, अर्थात् राजा सामन्त जागीर को खालसा अर्थात् केन्द्र की भूमि में पुनः सम्मिलित नहीं कर सकता था। सामन्त व्यवस्था को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि – सामन्त व्यवस्था रक्त सम्बन्ध पर आधारित कुलीय प्रशासनिक और सैनिक व्यवस्था थी, जिसमें राजा समकक्षों में प्रमुख होता था। राज्य को एक परिवार और राजा को उसका प्रमुख मानते हुए, सामन्त परिवार के सदस्य होने के नाते उसकी सुरक्षा और संचालन का उत्तरदायित्व राजा और सामन्त सामूहिक रूप से मानते थे। राजा और सामन्तों के मध्य भाईचारे का सम्बन्ध था।

सामन्त व्यवस्था का प्रारम्भ : –

सामन्त व्यवस्था कब प्रारम्भ हुई, इस सम्बन्ध में अब तक कोई निश्चित मत नहीं बन पाया है। प्रौ. राय चौधरी ने इसका उदयकाल छ:ठी शताब्दी माना हैं, प्रौ. डी.डी. कौशाम्बी ने गुप्त काल के बाद सामन्त व्यवस्था का विकास काल माना है, प्रो. आर.एस. शर्मा ने चौथी शताब्दी में सामन्त व्यवस्था का प्रारम्भ होने से सम्बन्धित तर्क देते हुए इसे ग्याहरवीं और बारहवीं शताब्दी में विकसित हुआ स्वीकार

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

किया है, रूसी इतिहासकार कोवालस्वी ने इसे मुस्लिम आक्रमण के बाद विकसित व्यवस्था माना है। अधिकांश इतिहासकारों की मान्यता है कि सामन्त व्यवस्था सम्भवतः गुप्तकाल में प्रारम्भ हुई, लेकिन राजस्थान में इसका विकसित एवं स्पष्ट स्वरूप राजपूतों का शासन स्थापित होने के साथ प्रारम्भ हो गया। राजस्थान भू–भाग पर राजपूतों की विभिन्न शाखाओं : चौहान, गुहिल–सिसोदिया, राठौड़, कछवाह, भाटी, हाड़ा आदि ने अपना राज्य स्थापित किया, जो उनकी रियासतें कहलाई अपनी रियासतों की सुरक्षा और सामान्य प्रशासन व्यवस्था संचालन हेतु शासक ने अपने परिवारजनों, कुलीय सम्बन्धियों तथा विश्वस्त सेना नायकों और अधीनस्थों को जागीरें देकर अपना सामन्त बना लिया, कालान्तर में यह रक्त सम्बन्ध कुलीय परम्परा बन गई। साथ ही कई रियासतों में यह परम्परा भी प्रचलित हो गई कि सामन्त को राजा खालसा क्षेत्र जो कि राजा के द्वारा प्रशासित एवं नियंत्रित क्षेत्र था, उस सीमान्त क्षेत्र की भूमि आवंटित की जाती थी, जिससे बाहरी आक्रमण के समय खालसा क्षेत्र की सुरक्षा का उत्तदायित्व निभाये। राजा के सहयोगी यह कुलीय भू–स्वामी मध्यकाल में 'सामन्त जागीर' कहलाने लगी।

जागीर फारसी शब्द है, प्रो. इरफान हबीब ने जागीर शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया है – "जागीर दो शब्द जय + गीर का सयुक्त रूप है, जिसका शाब्दिक अर्थ है राज्य द्वारा प्रदत्त भूमि का वह भाग जिससे उस भू–क्षेत्र से राजस्व वसलू करने का वैधानिक अधिकारी होता था।"

सामन्त व्यवस्था का स्वरूप :–

कर्नल जेम्स टॉड ने इंग्लैण्ड की फ्यूडवल व्यवस्था के समान ही राजस्थान की सामन्त व्यवस्था को मानते हुए इसे भी इंग्लैण्ड के समान फ्यूडवल व्यवस्था माना है, लेकिन राजस्थान की सामन्त व्यवस्था का स्वरूप पश्चिमी व्यवस्था से पूर्णतः भिन्न है। पश्चिम में राजा और सामन्त के मध्य स्वामी और सेवक का सम्बन्ध होता हैं इसके विपरीत राजस्थान के भाई–बन्धु का सम्बन्ध होता हैं, यहाँ राजा समकक्षों में प्रमुख होता है राजा राज्य का सर्वोच्च सत्ता का केन्द्र होता था और उसके बाद सामन्तों का समूह होता, जो कि कुलीय व्यवस्था से संगठित होता था, राजा राज्य का प्रधान था तो सामन्त अपनी जागीर में प्रमुख थे, सामन्त राजनीतिक और सामाजिक मामलों में समानता का दावा करते थे।

इस प्रकार राजस्थान में प्रचलित राजा और सामन्त शासन व्यवस्था का प्राथमिक स्वरूप पदसोपान व्यवस्था पर आधारित नहीं था बल्कि एक टेन्ट के समान स्तम्भों पर आधारित व्यवस्था थी, जिसमें राजा मध्य में स्थित मुख्य स्तम्भ होता था। टेन्ट के एक भी स्तम्भ के कमजोर होने पर व्यवस्था बिगड़ जाती है उसी प्रकार सामन्त और शासक के सम्बन्ध परस्पर निर्भर थे।

सामन्त प्रशासन स्वरूप की विशेषतायें : –

राजा से जन्मजात अधिकार के रूप में प्राप्त भूमि के साथ ही सामन्त के विशेषाधिकार एवं उत्तरदायित्व भी निर्धारित हो जाते थे। इस व्यवस्था की निम्न विशेषताये थी :–

(1) यह रक्त सम्बन्ध पर आधारित सगोत्रिय कुलीय व्यवस्था थी।

(2) राजा महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर सामन्तो को नियुक्त करता था।

(3) बिना सामन्तों से परामर्श किये राजा कोई भी महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक, सैनिक एवं नीतिगत निर्णय नहीं ले सकता था।

(4) राजा और सामन्त के सम्बन्ध स्वामी और सेवक के नहीं होते थे, इस तथ्य को सम्मान देते हुये यह आचार सहिंता रूपी परम्परा प्रचलित थी कि शासक सामन्त को काकाजी एवं भाई जी सम्बोधित करें, इसी प्रकार सामन्त भी राजा को बापजी सम्बोधित करते थे।

(5) सामन्त का उत्थान और पतन राजा के साथ ही होता था। इस दृष्टि से सामन्त किसी अन्य राज्य से युद्ध एवं सन्धि का निर्णय नहीं कर सकता था।

(6) राज्य की सुरक्षा के लिये सामन्त को एक निश्चित सेना रखनी होती थी यह कार्य कुलीय भावना के आधार पर ही की जाती थी वे अपनी पैतृक सम्पति की रक्षा करना अपना उत्तरदायित्व समझते थे।

(7) राजा के उत्तराधिकारी के निर्णय में सामन्त निर्णायक भूमिका निभाते थे, कई बार शासक द्वारा मनोनीत उत्तराधिकारी के सामन्तों को स्वीकार नहीं किया और उसे बदल दिया। यहाँ जयेष्ठ पत्रु को उत्तराधिकारी बनाने की परम्परा थी लेकिन ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब सामन्तो को जयेष्ठ पुत्र की योग्यता और नेतृत्व क्षमता पर संदेह हो तो वे योग्य पुत्र या भाई को सिंहासन पर बैठा देते थे।

(8) सम्मान और कर्तव्य पर आधारित प्रशासनिक व्यवस्था थी राजा को सामन्तो के विशेषाधिकारों का सम्मान करना होता था और पालन करना होता था। सामन्तों के राज्य और शासक के प्रति निर्धारित कर्तव्यों का पलन करना होता था।

(9) मध्यकाल में सामन्त व्यवस्था में श्रेणी व्यवस्था भी प्रारम्भ हुई।

मध्यकाल में सामन्त व्यवस्था एवं प्रशासन : —

राजस्थान की सामन्त व्यवस्था पर मध्यकाल में कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं। 1562 में मुगल सम्राट अकबर का राजपूतों से सम्बन्ध एवं सन्धियों का युग प्रारम्भ होता है, उक्त नये सम्पर्क ने राजस्थान की विभिन्न रियासतों की प्रशासनिक व्यवस्था जो कि सामन्त व्यवस्था के माध्यम से थी वह प्रभावित हुई। इसका मूल कारण था कि मुगलों से सन्धि के बाद युद्ध की स्थिति लगभग समाप्त हो गई अतः अब शासन की सैनिक सहयोग के लिये सामन्तों पर निर्भरता कम हो गई, इसके अतिरिक्त मुगलों से सन्धि के बाद शासक मुगल मनसबदार बन गये अतः उन्हे मुगल सरंक्षण प्राप्त था।

सहयोगी की स्थिति में परिवर्तन : —

उक्त परिवर्तित स्थिति के कारण सामन्त प्रशासनिक व्यवस्था पर एक प्रमुख प्रभाव यह पड़ा कि सामन्त की स्थिति सहयोगी के स्थान पर सेवक की हो गई। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से शासक समकक्षों में प्रमुख ही था, लेकिन व्यावहारिक रूप में स्थिति बदल गई, अब राजा स्वामी के समान व्यवहार करने लगा। अब तक सामन्त राजा की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी के मामले में निर्णायक भूमिका निभाते थे, लेकिन अब स्थिति बदल गई, मध्यकाल में मेवाड़ राज्य को छोड़कर अन्य रियासते जो मुगल मनसबदार थे, उन रियासतों के उत्तराधिकारी मामलों में मुगल शासक रुचि लेने लगे, विवादित स्थिति होने पर मुगल शासक अपने विवेक से वहाँ राजा बनाते थे ऐसे नये शासक का सामन्त विरोध नहीं कर सकते थे, इस प्रकार जो सामन्त व्यवस्था एक टंटे का स्परूप लिये हुए थी, वहीं अब मध्यकाल में मनसबदारी व्यवस्था से प्रभावित होकर पदसोपान व्यवस्था के निकट पहुँच गई, यद्यपि मूल स्वरूप यथावत् बना रहा।

सेवाओं के साथ कर व्यवस्था : —

परम्परागत शासन व्यवस्था के अनुसार सामन्त युद्ध एवं शान्ति के समय राजा को अपनी चाकरी अर्थात् सेवायें देता था, लेकिन उसके साथ कोई 'कर' सम्बन्ध नहीं था। मध्यकाल में बड़ा प्रशासनिक परिवर्तन हुआ, नई व्यवस्था के अनुसार सेवाओं के साथ कर व्यवस्था निर्धारित कर दी गई। सामन्त शासक को पट्टा रेख और भरतु रेख देने लगा, पट्टा रेख से तात्पर्य था राजा द्वारा प्रदत्त जागीर के 'पट्टे' में उल्लेखित अनुमानित राजस्व तथा 'भरतु' रेख से तात्पर्य था राजा द्वारा सामन्त को प्रदत्त जागीर के पट्टे में उल्लेखित 'रेख' के अनुसार राजस्व भरता (जमा करता) था। इन दो प्रमुख करों के अतिरिक्त अन्य कई कर लगाये प्रत्येक राज्य में अलग—अलग कर व्यवस्था थी, जिनमें प्रमुख कर उत्तराधिकार शुल्क था। इस प्रकार मध्यकाल में मुगल मनसब प्रशासन व्यवस्था से प्रभावित होकर सैनिकों का सैनिकबल उनकी आय के अनुसार निर्धारित कर दिया गया, इसका परिणाम यह हुआ कि शासक सामन्तों पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने की प्रक्रिया में आगे बढ़ गये।

रेख : —

रेख से तात्पर्य जागीर की अनुमानित वार्षिक राजस्व से था, जिसका उल्लेख शासक प्रदत्त जागीर के पट्टे में करता था रेख का दूसरा अर्थ सैनिक कर से भी लिया जाता है। रेख द्वारा निर्धारित आय के मापदण्डों के आधार पर ही राज्य शुल्क का हिसाब किताब रखता था, रेख के आधार पर ही

सामन्त से उत्तराधिकार शुल्क, सैनिक सेवा, न्योता शुल्क आदि का निर्धारित होता था। रेख न तो नियमित रूप से प्रतिवर्श वसूल की जाती थी और न ही इसकी दर निष्चित थी।

उत्तराधिकारी शुल्क :–

सामन्त व जागीरदार की मृत्यु के बाद उक्त जागीर के नये उत्तराधिकारी से यह कर वसूल किया जाता था। अलग अलग रियासतों में 'उत्तराधिकारी कर' का नाम अलग था, जोधपुर में पहले 'पेशकशी' और बाद में 'हुक्मनामा' कहलाया, मेवाड़ और जयपुर में 'नजराना', कुछ अन्य रियासतों में 'कैद खालसा' और 'तलवार बंधाई' कहलाते थे। जैसलमेर एकमात्र ऐसी रियासत थी जहाँ उत्तराधिकारी शुल्क नहीं लिया जाता था। 'उत्तराधिकारी शुल्क' एक प्रकार से उक्त जागीर के पट्टे का नवीनीकरण करना था जागीरदार की मृत्यु की सूचना पाते ही राजा अपने दीवानी अधिकारी को कुछ कर्मचारियों के साथ उस जागीर में भेजता यदि उत्तराधिकारी शुल्क इन्हे जमा नहीं कराया जाता तो जागीर जब्त करने का निर्देश दीवान को दिया जाता था। कुछ अन्य कर भी थे जैसे 'नजराना कर' यह राजा के बड़े पुत्र के प्रथम विवाह पर सामन्त एवं अन्य जागीरदार नजराना देते, 'न्योत कर' यह राजकुमारियों के विवाह पर आमंत्रित करने पर था, 'तीर्थयात्रा कर' यह राजा के तीर्थयात्रा पर जाने के समय भेंट आदि दी जाती थी।

इस प्रकार की कर व्यवस्था से एक और शासक और सामन्त सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ा क्योंकि यह व्यवस्था शासक की सर्वोच्चता स्थापित करने में सहायक थी, दूसरा करों की संख्या निरन्तर बढ़ने से इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव जनसमुदाय पर पड़ा। सामन्त एवं जागीरदार जनता से अधिक लगान वसूली करने लगें।

सामन्तों की सैनिक सेवा : –

परम्परागत रूप से सामन्त राजा को सैनिक सेवाएं देते थे, यह दो प्रकार की थी– एक युद्ध के समय, दूसरा शान्ति के समय। युद्ध के समय राजा सामन्त को खास रूक्का भेजकर जमीयत (सेना) सहित सेवा में उपस्थित होने के लिये कहता था। शान्ति के समय वर्ष में एक बार निश्चित अवधि के लिये अपनी जमीयत (सेना) के साथ उपस्थित होना, यह उसकी जागीर के पट्टे में निर्धारित 'रेख' पर आधारित था।

शान्ति के समय शासक की सेवा में उपस्थित होकर वह शासक को राजकार्य में सहयोग देते थे। निश्चित अवधि के अतिरिक्त कुछ विशेष अवसर एवं त्यौहार जैसे – दशहरा, अक्षय तृतीया आदि पर भी दरबार में उपस्थित होना पड़ता था तथा राज परिवार की महिलाये आदि के तीर्थयात्रा या अन्य यात्रा पर जाने पर किसी भी सामन्त को उनकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व दिया जाता था। सामन्त को कुछ कार्यों के लिये शासक से पूर्व अनुमति लेनी होती थी विशेषकर अपने पुत्र एवं पुत्री के विवाह की एवं अपनी जागीर में दुर्ग एवं परकोटा बनवाने की।

सामन्तों की श्रेणीयाँ : –

मध्यकाल में सामन्तों की श्रेणियाँ एवं पद प्रतिष्ठा भी निर्धारित कर दी गई। यह व्यवस्था मुगल मनसबदारी व्यवस्था से प्रभावित थी लेकिन पूर्णतः उसके अनुसार नहीं थी, मनसबदारी व्यवस्था नौकरशाही व्यवस्था थी, जिसका निर्धारण आय के आधार पर होता था, इसके विपरीत राजस्थान में सामन्तों की श्रेणियों का निर्धारण कुलीय प्रतिष्ठा एवं पद के अनुसार होता था। इस व्यवस्था से मेवाड़ रियासत भी अछूती नहीं रहीं, प्रत्येक राज्य की श्रेणी विभाजन की व्यवस्था अलग–अलग थी। मारवाड़ में चार प्रकार की श्रेणयाँ थी – राजवी, सरदार, गनायत ओर मुत्सद्दी। 'राजवी' राजा के तीन पीढियों तक के निकट सम्बन्धी होते थे, उन्हें रेख, हुक्मनामा कर और चाकरी से मुक्त रखा जाता था। मेवाड़ में सामन्तों की तीन श्रेण्यिाँ होती थी जिन्हे 'उमराव' कहा जाता था, प्रथम श्रेणी के सामन्त 'सोलह', दूसरी श्रेणी में 'बत्तीस' और तृतीय श्रेणी के सामन्त गोल के उमराव कई सौ की सख्या में होते थे। प्रथम श्रेणी के 16 उमरावो में सलूम्बर के सामन्त का विशेष स्थान होता था, महाराजा की अनुपस्थिति में नगर का

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

शासन–प्रशासन और सुरक्षा का उत्तरदायित्व उसी पर होता था। जयपुर राज्य में महाराजा पृथ्वीसिंह के समय सामन्तों श्रेणियाँ का विभाजन किया, यह उनके 12 पुत्रो के नाम से स्थाई जागीरे चली, जिन्हे 'कोटड़ी' कहा जाता था। कोटा में 'राजवी' कहलाते थे, राजवी सरदारों की संख्या तीस थी। इनमें सबसे अधिक संख्या हाड़ा चौहानों की होती थी। बीकानेर में सामन्तों की तीन श्रेणियाँ थी प्रथम श्रेणी में वंशानुगत सामन्त जो राव बीका के परिवार से थे, दूसरी श्रेणी अन्य रक्त सम्बन्धी वशांनगुत एवं तृतीय श्रेणी में अन्य राजपूत थे, जिनमें बीकानरे में राठोड़ शासन स्थापित होने से पूर्व शासक परिवार के सदस्य थें एवं भाटी और सांखला वशं के थे। जैसलमेर में भाटी रावल हरराज के शासनकाल में सामन्तों में श्रेणी व्यवस्था प्रारम्भ हुई, दो श्रणियाँ थी एक डावी (बाई) दूसरी जीवणी (दाई)।

सामन्तों की अन्य श्रेणियां :–

इनमें दो मुख्य थे – एक भौमिया सामन्त और दूसरा ग्रासिया सामन्त, 'भौमिया' वे लागे कहलाते थे, जिन्होंने सीमा या गाँव की रक्षा के लिये बलिदान दिया हो इन्हें उनकी जागीर से बेदखल नहीं किया जा सकता था। 'भौमिया सामन्त' दो श्रेणियों में विभक्त थे – एक मोटे दर्जे के भौमिया। इनके पर कोई दायित्व नहीं था। दूसरा छोटे भौमिया – इन्हे किसी भी प्रकार का लगान राज्य को नहीं देना पड़ता था, लेकिन इन्हे राज्य प्रशासन को कुछ सेवायें देनी पड़ती थी उनमें मुख्य सेवायें थी– डाक पहुँचाना, आवश्यक सहायता पहुँचाना, खजाने की सुरक्षा करना और अधिकारियों के सरकारी यात्रा के समय उनके ठहरने और खाने–पीने की व्यवस्था करना आदि ग्रासिया अपनी सैनिक सेवा के बदले भूमि के ग्रास अर्थात् उपज का उपयोग करते थे, यदि ग्रासियाँ अपनी सेवा में किसी भी प्रकार की ढील दिखाते तो उन्हे ग्रास सामन्त से बेदखल किया जा सकता था।

सामान्य प्रशासन :–

प्रशासन को चुस्त दुरुस्त बनाने की दृष्टि से मुगल शासन प्रणाली की कुछ व्यवस्थाओं को राजस्थान में भी लागू किया गया। रियासतों ने अपने प्रशासन को परगनों, तहसीलों और ग्रामों जिसे 'तपो' भी कहते थे, अंतिम इकाई गाँव अर्थात मोजा आदि में विभाजित किया, विभिन्न इकाइयों पर मुत्सद्दी अर्थात् अधिकारी नियुक्त किये, यह एक नई नौकरशाही विकसित हुई धीरे–धीरे यह मुत्सद्दी (अधिकारी) वर्ग भी वंशानुगत हो गया मुत्सद्दी वर्ग को वेतन के रूप में जागीर प्रदान की जाती थी, लेकिन यह जागीर वंशानुगत नहीं होती थी वरन् मुत्सद्दी की मृत्यु के बाद जागीर खालसा कर दी जाती थी। मध्यकालीन नौकरशाही के लिये कोई निश्चित नियम नहीं थे, शासक इन अधिकारियों से परामर्श किया करता था।

केन्द्रीय शासन : –

राजा–सम्पूर्ण शक्ति का सर्वोच्च केन्द्र था, लेकिन पिता तुल्य शासनकर्ता एवं मंत्री परिषद् से परामर्श लेता था। राजा के प्रशासनिक कार्यों को सम्पादित करने के लिये मुत्सद्दी वर्ग की पदसोपान व्यवस्था थी –

प्रधान – राज के बाद यह प्रमुख होता था तथा राजा की अनुपस्थिति में राजकार्य देखता था। विभिन्न रियासतों में प्रधान के अलग–अलग नाम थे – कोटा और बूँदी में 'दीवान', मेवाड़, मारवाड़ और जैसलमरे में 'प्रधान', जयपुर में 'मुसाहिब' और बीकानेर में 'मुखत्यार' कहते थे। आवश्यक नहीं था कि सभी रियासतों में यह पद राजपूतों को ही दिया जाय। जाट शासित भरतपुर रियासत में राजा सूरजमल (1756–25 दिसम्बर 1763ई.) ने नया प्रशासनिक ढांचा स्थापित किया, शासकीय पदों के लिये धर्म और जाति को आधार नहीं माना, सूरजमल एक योद्धा के साथ–साथ योग्य प्रशासक एवं कृषि विशेषज्ञ भी था। भरतपुर में राजा के बाद प्रधान को मुखत्यार कहते थे। रियासतों में अन्य पदसोपान व्यवस्था निम्न थी।

दीवान एवं बक्षी– अधिकाशतः जहाँ तीन प्रमुख थे वहाँ बक्षी होते थे; यह सेना विभाग का प्रमुख होता था, जोधपुर में फौज बक्षी भी होता था। बक्षी सेना विभाग के अतिरिक्त रसद व्यवस्था, सेना का

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

अनुशासन एवं प्रशिक्षा आदि देखता था।

नायब बक्षी – यह सेना और किलों पर हाने भी हिसाब रखता था। वाले खर्च का विवरण रखता था और सामन्तों की 'रेख' का शिकदार – यह मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के कातेवाल के समान हातो था, यह गैर सैनिक कर्मचारियों के राजेगार से सम्बंधित कार्य दखेता था।

न्याय व्यवस्था : –

परम्परागत न्याय व्यवस्था थी, राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था, सामन्त अपनी जागीर में प्रमुख न्यायाधीश की स्थिति रखता था। इसके अतिरिक्त गाँवों में ग्राम पंचायते होती थी। खालसा क्षेत्र में न्याय का कार्य हाकिमों के द्वारा किया जाता था, जागीर में जागीरदार न्यायाधिकारी होता था। जातिय पंचायते भी होती थी। छोटी चौरियों और सामाजिक अपराध सम्बन्धित झगड़े जाति पंचायत, ग्राम पंचायत द्वारा सुलझा लिये जाते थे, वहाँ नहीं सुलझने पर हाकिम और जागीरदार के न्यायालय में जाते, भूमि विवाद सम्बन्धित झगड़े भी आवश्यकता पडने पर हाकिम और जागीरदार के न्यायालय में जाते थे। बड़े अपराध एवं मृत्यु दण्ड सम्बन्धित विवादों में अन्तिम निर्णय राजा का होता था। न्याय का आधार परम्परागत सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था थी। मुकदमों का कोई लिखित रिकार्ड नहीं रखा जाता था। गवाही सम्बन्धित कोई पृथक अधिनियम नहीं था। डॉ. एम.एस. जैन ने लिखा है कि "अपराध को व्यक्ति के विरुद्ध अपराध माना जाता था, समाज के विरुद्ध नही।''

कानून के समक्ष सब बराबर नहीं थे। एक ही अपराध के लिये दण्ड देते समय दोनो अपराधी और जिसके विरुद्ध अपराध किया गया की सामाजिक स्थिति देखकर ही दण्ड दिया जाता था।" न्याय व्यवस्था के अनुसार सामन्त को 'सरणा' (शरणागत) का अधिकार था, यदि कोई सामन्त की शरण में चला जाय तो उसकी रक्षा करना सामन्त की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता था, कई बार अपराधी भी सामन्त की शरण में चले जाते थे, जिसका समाज और न्याय व्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पडता। मध्यकालीन न्याय व्यवस्था की मुख्यविशेषता न्याय का सस्ता होना और शीघ्र होना था। उस समय दण्ड विधान भी कठोर नहीं थे।

भू–राजस्व प्रशासन :–

भूमि एवं भू–स्वामित्व –

प्रशासन के तीन प्रमुख स्तम्भ थे – सैनिक व सामान्य प्रशासन, दूसरा न्याय व्यवस्था और तीसरा भू–राजस्व व्यवस्था। सैनिक और न्याय व्यवस्था के समान ही भू–राजस्व व्यवस्था में भी सामन्तों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। मध्यकाल में कृषि ही आय का मुख्य स्रोत था, इस दृष्टि से भूमि और उस पर उत्पादित फसल पर लगान वसूल करने वाली संस्था का विशेष महत्व था। भूमि दो भागों में विभाजित थी एक खालसा भूमि–जो कि सीधे शासक के नियंत्रण में होती थी, जिसे 'केन्द्रीय भूमि' भी कह सकते है। दूसरी जागीर भूमि यह चार प्रकार की थी। (1) सामन्त जागीर (2) हुकूमत जागीर (3) भौम की जागीर (4) सासण जागीर। भौम की जागीर राज्य को अपनी सेवायें देते थे, और कुछ निश्चित कर देते थे। सासण जागीर – धर्मार्थ, शिक्षण कार्य, साहित्य लेखन कार्य चारण व भाट आदि को अनुदान स्वरूप दी जाती यह माफी जागीर भी कहलाती थी क्योंकि यह कर मुक्त जागीर होती थी। हुकूमत जागीर – यह मुत्सद्द्यिों को दी जाती थी परगने के हाकिम का उत्तरदायित्व था कि वह लगान राजकोष में जमा कराये यह वेतन के रूप में दी गई जागीर होती थी, जो उस जागीरदार की मृत्यु के बाद खालसा कर दी जाती थी। सामन्त जागीर जन्मजात जागीर थी, इसका लगान सामन्त द्वारा वसूल किया जाता था "भूमि दो प्रकार की होती थी – कृषि भूमि और चरनोता भूमि। कृषि भूमि वह थी जो कि खेती योग्य हो और चरनोता भूमि पर पशुओं के लिये चारा उगाया जाता था, जिसे आधुनिक राजस्व भाषा में चरागाह या गोचर भूमि कहा जाता है। वस्तुतः चरनोत भूमि सार्वजनिक भूमि थी।"

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

किसान / कृषक :–

कृषक मुख्यतः दो प्रकार के होते थे – बापीदार और गैर–बापीदार। 'बापीदार किसान' को खुद काश्तकार भी कहते थे, यह वह किसान होते थे जो खेती की जाने वाली भूमि का स्थाई स्वामी होता था, वह जोत के लिये आवश्यक सामग्री जुटा सके, किसान लम्बे समय से वहाँ रह रहा हो। 'गैर–बापीदार' को शिकमी काश्तकार भी कहते थे, इन्हे वंशानुगत अधिकार प्राप्त नहीं थे भूमि के स्वामी नहीं थे, ये खेतीहर मजदूर थे। बापीदार किसानों को कई रियासतें थी –

– उनके खेत की लकड़ी और कुओं पर उनका स्वामित्व था,

– कर निर्धारण के समय यह ध्यान रखा जाता था कि कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये बापीदार ने किन साधनों का उपयोग किया है।

– बापीदार किसानों के भू–स्वामित्व को तत्काल समाप्त नहीं किया जा सकता था, यदि दुर्भिक्ष के समय किसान गाँव छोड़कर कुछ अवधि के लिये बाहर चला जाता था तब भी भूमि किसान की ही रहती थी, पुनः लौटने पर किसान अपनी भूमि को जाते सकता था।

स्पष्ट है कि भूमि पर किसानों का स्वामित्व था। राजस्थान में प्रचलित एक कहावत का कर्नल जेम्स टॉड ने उल्लेख कर शासक–कृषक भू–राजस्व पर प्रकाश डाला है, कहावत थी– "भोग रा धणी राज हो, भोम रा धणी मा छौ।" अर्थात् भूमि (भौम) को मालिक जाते ने वाला और राजा राजस्व (भोग) का अधिकारी। किसानो को दी जाने वाली भूमि का पट्टा जागीरदार के रजिस्टर में दर्ज रहता था, जिसे 'दाखला' कहते थे।

भरतपुर रियासत में राजा सूरजमल के समय कृषि की उन्नति हेतु दृढ़ नीति निर्धारित की गई, फलस्वरूप राजा सूरजमल के शासन के अन्तिम वर्ष 1763 ई. में भरतपुर राज्य की कृषि से आय लाख रुपये प्रतिवर्ष थी। कृषि से होने वाली आय में से बडी धन राशि उसने शिक्षा और साहित्य के विकास में लगाया। राजा सूरजमल की मान्यता थी कि यदि राज्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं सुदृढ़ है तो खराब से खराब समय में भी राज्य मजबूत बना रह सकता है। राजा सूरजमल द्वारा स्थापित मजबूत कृषि नीति भरतपुर की प्रगति में सहायक सिद्ध हुई।

लगान निर्धारण : – भूमि स्वामित्व के बाद उस पर लगान वसूली करना महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व था, भू–राजस्व को लगान, भोग हांसिल और भोज आदि कहा जाता था। लगान निर्धारण अलग–अलग रियासतों में भिन्नता लिये हुए थे, उस रियासत के सामन्त और जागीरदार उसी रियासत की परम्परा के अनुसार लगान निर्धारण करते थे प्रचलित विभिन्न व्यवस्थाओं में मुख्यतः तीन प्रकार की कर निर्धारण व्यवस्था उभरती है :– प्रथम भूमि का स्वरूप यह दो भागो में विभक्त थी – बारानी अर्थात् बरसात के पानी से सिंचित भूमि ओर उन्नाव अर्थात् जो भूमि तालाब, कुओं, बावड़ियों आदि से सिंचित की जाती हो। दूसरा निर्धारण तत्त्व फसल की विशेषता थी, दो बातों को ध्यान में रखकर राजस्व निर्धारण किया जाता था। बाजार भाव और भूमि की उत्पादकता की क्षमता, तीसरा काश्तकार की जाति इस सम्बन्ध में यह मान्यता थी कि राजपूतों और विश्नोईयों की अपेक्षा जाटों से अधिक कर लिया जाता था। राजपूत, बाह्मण और महाजन किसानों को भू–राजस्व में विशेष छूट दी जाती थी। खरीफ और रबी की फसलों पर भी लगान की दरे भिन्न भिन्न होती थी, लगान निधार्रण एवं वसलूी के समय पटलेया चौधरी की भूमि का महत्वपूर्ण होती थी। यह सरकार और कृषक के मध्य मध्यस्तर के रूप में निगरानी में कार्य सम्पादित कराते थें, पटेल या चौधरी सरकारी कर्मचारी नहीं होते थे।

लगान वसूली की विधि :–

शासक, सामन्त, जागीरदार एवं अधिकारी कृषकों से लगान वसूली के तीन प्रकार की विधि को अपनाते थे : –

(1) लाटा या बटाई विधि :– इसमें फसल कटने योग्य होने पर लगान वसूली के लिये नियुक्त अधिकारी की देखरेख में फसल की कटाई की जाती थी। धान साफ होने के बाद फसल में से राजस्व के लिये

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

दिये जाने वाला भाग तोल कर अलग कर दिया जाता।

(2) कून्ता विधि : – इस विधि के अनुसार खड़ी फसल को देखकर अनुमानित लगान निर्धारित करना। कून्ता विधि में तोल या माप नहीं किया जाता था।

(3) अन्य प्रणाली :– इसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है– मुकाता, डोरी और घूघरी। डोरी मुकाता में कर निर्धारण एक मुश्त का निर्धारण करता था नकद कर भी लिया जाता था। डोरी कर निर्धारण में नापे गये भू–भाग का निधार्रण करके कर वसलू करना। घूघरी कर विधि के अनुसार शासक, सामन्त एवं जागीरदार किसान को जितनी घूघरी अर्थात् बीज देता था, उतना ही अनाज लगान के रूप में लेता था। दूसरी घूघरी विधि के अनुसार प्रति कुआं या खेत की पैदावर पर निर्भर था। मध्यकालीन भू–राजस्व में किसान पूर्ण सुरक्षित स्थिति में थे, ये आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास का युग माना जाता है क्योकि किसान भू–स्वामी था, अकाल के समय उसे लगान से छूट मिलती थी, पशुओं के लिये चरागाह भूमि छोड़ी जाती थी, उस पर सामूहिक अधिकार होता, शासक उसे खालसा नहीं कर सकता था और चरनोत भूमि पर शिकार करने का अधिकार किसी को नहीं था, भूमि एवं लगान सम्बन्धित विवाद ग्राम पंचायत में सुलझाये जाते थे। मध्यकालीन सामन्तवाद पर आधारित यह प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटिश सर्वोच्चता काल में नई प्रशासनिक संस्थाओं के उदय के साथ कमजारे होती गई और 1947 में स्वतन्त्र भारत में राजस्थान के एकीकरण के बाद मध्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था समाप्त हो गई।

संदर्भ : –

हरिशचन्द्र वर्मा : मध्यकालीन भारत भाग–1, ॉिन्दी माध्यम, कार्यनवय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

विद्याधर महाजन : मध्यकालीन भारत, एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।

डॉ. विपिन बिहारी सिन्हा : मध्यकालीन इस्लाम, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

एस. के. पाण्डे : मध्यकालीन भारत, प्रयाग ऐकेडमी इलाहबाद।

म्जुमदार, राय चौधरी, पन्त : भारत का वृहत इतिहास–2, मेक मिलन इण्डिया लि., मुम्बई।

वी. के. अग्निहोत्री, भारतीय इतिहास, एलॉइड पब्लिशर्स प्राइवेट लि. मुम्बई।

स्मीशचन्द्र : मध्यकालीन भारत, औरियंट ब्लैक स्वॉन, हैदराबाद।

के0सी0 श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ० 316 "बैजमन्तितो सेडिना भुतपालेना सेलधरं परिनिठपिंत जबुदिपम्हि उत्तम।''

चौबे, झारखण्डे (2010) : 'इतिहास–दर्शन', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (उ.प्र.),

पाण्डेय, राजेन्द्र : भारत का सांस्कृतिक इतिहास, कृ प्र., हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2002,

बी. एल. गुप्ता : मध्यकालीन भारत, जयपुर पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर, ईस्वी 1971।

आनन्द के. कुमारस्वामी : हिस्टी ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशिया आर्ट, लन्दन, 1927 एलिमेण्ट ऑफ बुद्धिष्ट आइक्नोग्राफी

गुप्ता बी. एल. : मध्यकालीन भारत, जयपुर पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर, ईस्वी 1971

मालिक (2013) : मौर्य काल की सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक दशा का अध्ययन।

राजपुरोहित डॉ. भगवती लाल : भारतीय कला और सांस्कृति, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, 2003

पांडे, धनपति (1998) : प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास (हिंदी में)। मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन। आईएसबीएन 978–81–208–2380–8।

सेन, शैलेंद्र नाथ (1999) : प्राचीन भारतीय इतिहास और सभ्यता, न्यू एज इंटरनेशनल,